ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.19, No.2, April – June,2024/4

''मानव के लिए शाकाहार की आवश्यकता''

डॉ यशमंत सिंह, असि0 प्रोफे0, संस्कृत विभाग, राणा प्रताप पी0जी0 कॉलेज, सुल्तानपुर

https://doi.org/10.61410/had.v19i2.181

सारांश

ज्ञात स्रोतों से पता चलता है कि मनुष्य के पूर्वज जिन्हें हम आदि मानव कहते हैं वे जन्म से ही मांसाहारी थे। जब भी उन्होंने मां का दूध छोड़ होगा तो जंगली जानवर का शिकार करके मांस से ही पेट की क्षुधा शांत करते थे, परंतु यह मनुष्य का आदिम स्वरूप था जबकि उसे यह पता नहीं था कि मनुष्य जन्म का उद्देश्य क्या है, मानव में ईश्वर ने वह कौन सी अद्वितीय शक्ति निहित कि है जिससे वह ईश्वर के समतुल्य बन सकता है, अपनी क्षमताओं का विकास कर सकता है ? ज्यों–ज्यों मनुष्य का विकास हुआ उसनें शिकार की कठिनाईयों को जाना और शाकाहारी फसलों से क्षुधा शांत करने की सरलता को भी जाना। धीरे–धीरे ईश्वरीय कृपा से मनुष्य को ऐसे आध्यात्मिक गुरु भी मिले जिन्होंने मानव जीवन का उद्देश्य और उसकी सार्थकता बतायी और उसे शिष्यों को सिद्ध करके भी दिखाया। मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य आत्मस्वरूप को जानना एवं प्रभु को प्राप्त करना, उसके स्वरूप में एकाकार हो जाना है। इस पथ पर आगे बढ़ने में शाकाहार की उपयोगिता को संतों ने अत्यावश्क बताया है।

शब्द संकेतः– स्रोत, पूर्वज, मांसाहारी, शाकाहारी, क्षुधा, आध्यात्मिक, आत्मस्वरूप, एकाकार, संत

प्रत्येक कार्य को करने का कुछ ना कुछ प्रयोजन या उद्देश्य अवश्य होता है। हमारे शास्त्रों, और काव्यों में अनुबंध चतुष्ट्य की चर्चा प्रायः सभी जगहों पर की गई है जिसमें अधिकारी, विषय, संबंध और प्रयोजन को बताया गया है। कहा भी गया है ''परियोजनेन बिना मन्दोऽपि न प्रवर्त्ते'' अद्वैत वेदान्त में प्रयोजन पर चर्चा करते हुए इसके दो भाग किये हैं। प्रथम है मुख्य प्रयोजन और द्वितीय है अवान्तर या गौड़ प्रयोजन।

मानव के लिए शाकाहार अपनाने को भी हम दो प्रयोजनो में बांट सकते हैं। शाकाहार अपनाने का परम प्रयोजन न्यूनतम हिंसा या न्यूनतम पाप करते हुए जीवन जीना एवं कर्मों के बहुत बड़े भार से स्वयं को बचाते हुए आत्मोन्नति को प्राप्त करना या आत्मस्वरूप को जानना।

इसका अवान्तर प्रयोजन अभक्ष्य भक्षण का परित्याग करके इंसानियत के गुणों का विकास करना और अपने आस–पास के जीव जंतुओं पर दया करते हुए प्रेम, दया, उदारता, परोपकार आदि मानवीय गुणों का विकास करना । जिससे हम समाज में मनुष्यों और जीवों के प्रति सौहार्द्र पूर्ण रहने लायक पारिवारिक परिवेश का निर्माण कर सकें। मांसाहार के कारण पशु पक्षियों में होने वाले रोगों से ग्रसित होने का खतरा भी हम पर रहता है।

जब हम आहार के विषय में विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि बिना हिंसा या पाप किए हम किसी भी आहार को अपना कर अधिक दिन जीवित नहीं रह सकते।

ऐसी स्थिति में क्या हम सभी सजीव वस्तुओं को अपना आहार बनायें या उसमें से किसका चुनाव अपने आहार के लिए करें। संत तुलसीदास प्रभृति संतों एवं पूर्ण संतों ने भी कहा है ''जीवहिं जीव आहारा'' अर्थात जीव ही जीव का आहार है तो क्या इसका अर्थ हमें यह समझ लेना चाहिए कि कोई भी जीव किसी भी जीव को अपना आहार बना ले।

यदि इस विषय पर हम गंभीरता से विचार करें कि ईश्वर की ऐसी सृष्टि बनाने का क्या कारण रहा होगा कि हम आहार के लिए जीव पर निर्भर है तो हम पाते हैं कि जीव में ही विकसित

होने का गुण होता है अपने एक बीज से अनेक बीज बनाने और अपने ही समान तमाम वनस्पतियों एवं जीव जंतुओं को बढ़ाने का कार्य जीव के ही माध्यम से संभव है। यदि ईश्वर ने निर्जीव वस्तुओं को जीव का आहार बनाया होता तो अब तक आहार की समस्या पैदा हो गई होती जो कि सृष्टि के संकट का कारण बन जाता, सृष्टि में आहार का संकट न पैदा हो जाए इसलिए ही परमात्मा ने जीव को ही जीव का आहार बनाया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा, शास्त्र एवं पूर्ण संतों के अनुसार समस्त सृष्टि में परमात्मा ने 84 लाख प्रकार के योनियों की चर्चा की है जिसमें मनुष्य योनि को ही सर्वोत्तम बताया गया है। सभी जीवों में मनुष्य को ऐसा क्या प्राप्त है जिसके कारण इसे सर्वोत्तम कृति कहा गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा एवं संतों के अनुसार मानव जन्म इसलिए श्रेष्ठ है कि इसी शरीर में वह सामर्थ्य है जिससे हम परमात्मा के स्वरूप को जान सकते हैं उससे एकाकार हो सकते हैं उसमें विलीन हो सकते हैं, मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं जो मनुष्य जीवन का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है

अब हम पुनः परम पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए शाकाहार की उपयोगिता पर आते हैं। सृष्टिकर्ता ने सृष्टि में इतने छोटे–बड़े जीव बनायें हैं कि हम बिना हिंसा या पाप के जीवन जी ही नहीं सकते है। परंतु इससे बचने का एक उपाय भी ईश्वर ने ही बनाया है। और वह उपाय है ईश्वर की भक्ति। ईश्वर में अपार श्रद्धा, एवं भक्ति होने पर उसी में यह सामर्थ्य है कि वह हमारे पापों का अंत कर दे दूसरा कोई अन्य उपाय है ही नहीं। ईश्वर की भक्ति का तरीका हमारे जैसे शरीर वाला कोई पूर्ण गुरु ही बता सकता है अन्य कोई नहीं। पूर्ण गुरु वही होता है जिसने स्वयं भजन एवं सुमिरन करते हुए ईश्वर से एकात्मभाव स्थापित कर लिया हो। जो स्वयं ही ईश्वर हो गया हो, भले ही शरीर मानव का हो। अद्वैत वेदांत एवं उपनिषदें कहती हैं ''ब्रह्म वेत्ति ब्रह्मैव भवति अर्थात ब्रह्म भाव को प्राप्त हुआ व्यक्ति स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है उस अवस्था में ईश्वर एवं ब्रह्म भाव को प्राप्त हुआ व्यक्ति में कोई भेदभाव नहीं रह जाता है। ऐसे ज्ञानी जिनमे कबीरदास जी, गुरु नानक एवं संत रविदास आदि संतों के नाम आते हैं ऐसे व्यक्ति को गुरु बनाकर उनके बताये अनुसार भजन एवं सुमिरन करते हुए ही हम परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं कबीर दास जी ने गुरु की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है।

''गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूँ पाँय,
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय''।

इसके अनुसार एवं शास्त्रों के अनुसार सृष्टिकर्ता ने स्वयं को जानने का माध्यम गुरु को ही बनाया है अन्य किसी भी माध्यम से हम ईश्वर को नहीं जान सकते है।

सदानंद प्रणीत वेदांतसार में भी कहा गया है गुरुन उपसृत्य–– समित्पाणिः

सृष्टिकर्त्ता ने कर्म एवं भाग्य का सिद्धांत जो बनाया है उसमें सभी प्राणी समाहित हैं कोई भी प्राणी इससे अछूता नहीं है। कर्म करने का साधन शरीर तो है परंतु जीवात्मा जिस–जिस शरीर को धारण करती है उन सबके किए हुए कर्म पाप एवं पुण्य के रूप में जीवात्मा के साथ जुड़ते जाते हैं और इस प्रकार पाप एवं पुण्य के प्रभाव के कारण जीवात्मा आवरण की तरह ढक जाती है और मैली होती चली जाती है। जिस प्रकार से एक स्वच्छ दर्पण में प्रतिबिंब को दिखाने की क्षमता होती है परंतु धीरे–धीरे ऊपर धूल पड़ती जाए तो एक समय ऐसा आएगा कि हम उसमें कुछ भी नहीं देख पाएंगे और उस दर्पण का हमें कोई लाभ नहीं मिल पाएगा इसी तरह जीवात्मा अजर–अमर एवं अविनाशी है परमात्मा का अंश है परंतु विभिन्न शरीरों में आवागमन करने एवं उन शरीरों के द्वारा किए हुए कर्मों के फल स्वरूप प्राप्त हुए पाप एवं पुण्य रूपी प्रभाव के द्वारा जीवात्मा मैली सी हो जाती है।

अब मनुष्य को आत्म स्वरूप का बोध कैसे प्राप्त हो इसके लिए संतों, गीता एवं वेदों ने अनासक्त भाव से किए हुए कर्म की चर्चा की है। कर्म करते हुए उसमें कर्त्तापन भोक्तापन की प्रवृत्ति

से रहित होना ही अनासक्त भाव से किया गया कर्म है इसी को मध्ययुगीन संतो ने ईश्वर के भाणे में होकर रहना या उसकी मौज में होकर रहना भी कहा है अर्थात जो कुछ भी हम करते हैं या हो रहा है सब कुछ ईश्वर की रजा या मर्जी से हो रहा है सब कुछ करने कराने वाला ईश्वर है इस भाव से कर्म करना ही अनासक्त कर्म है इसका फल यह है कि इस तरह से किए हुए कर्म के फल मनुष्य को नहीं प्राप्त होते हैं सब कुछ ईश्वर को समर्पित हो जाता है। अब प्रश्न उठता है कि जो कर्म हमने पूर्व के कई जन्मों में किए हैं उससे मुक्ति जीवात्मा को कैसे मिले।

इस विषय में शास्त्रों एवं संतों ने बताया है कि ईश्वरीय विधान में कर्म तीन प्रकार के बताए गए हैं।

1. संचित कर्म। 2. प्रारब्ध कर्म। 3. क्रियमाण कर्म।

कर्म के विधान के अनुसार जीवात्मा विभिन्न शरीरों में रहते हुए जो भी कर्म संपादित करती है उसका फल भी उसी को भोगना पड़ता है इस तरह जो भी अच्छे या बुरे कर्म हम करते हैं उसके फलस्वरुप उससे प्राप्त होने वाले सुख–दुख, हानि–लाभ आदि का भोग भी हमें ही भोगना पड़ता है। अच्छे कर्मों का फल उच्च योनियों यथा देव योनियों, मनुष्य योनि या ऐश्वर्य संपन्न कुलों की प्राप्ति और उसमें प्राप्त होने वाले सुख आदि का मिलना। बुरे कर्म का फल नीची योनियों यथा पशु पक्षी या वृक्ष आदि के रूप में जन्म, जिसमें हम अपनी रक्षा तक नहीं कर पाते और दुख को प्राप्त हो जाते है।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्

ये सुख और दुख दोनों हमारे द्वारा किए गए पूर्व जन्मों के कर्मों द्वारा ही प्राप्त होते है। संचित कर्म वे हैं जो विभिन्न शरीरों को प्राप्त करने वाले जीवात्मा ने उन–उन शरीरों के द्वारा संपादित किए गए कर्मों के फलस्वरुप इकट्ठी की है। एक ही शरीर में किए गए कर्म अगले ही जन्म में शरीर पूरा का पूरा भुगतान नहीं कर पाता और कुछ संचित होता जाता है इन्हीं संचित कर्मों में से कुछ कर्मों का भुगतान करने के लिए इस शरीर में प्रारब्ध कर्म के रूप में दे दिए जाते हैं। प्रारब्ध को ही भाग्य कहते हैं प्रारब्ध कर्मों को कोई काट नहीं सकता इसको भोग संपादित करके ही समाप्त किया जा सकता है। संतो ने कहा कि जिस प्रकार से कुम्हार का चाक एक बार चला दिये जाने पर उसकी गति समाप्त होने पर ही चाक रूकता है। उसी प्रकार प्रारब्ध कर्म इस शरीर में रहकर भोगने के लिए मिले होते हैं।

क्रियमाण कर्म वे है जो हम इस जन्म में रहते हुए कर्म करते हैं इसमें कुछ तो तात्कालिक फल देने वाले होते हैं और कुछ समय आने पर फलित होते हैं बाकी जो बचे रहते हैं वह जीवन समाप्त होने पर संचित कर्मों में जुड़ जाते हैं।

इस प्रकार प्रारब्ध कर्म भोग करके ही उनसे छुटकारा मिलता है। क्रियमाण कर्म अनासक्त भाव से करने पर उसका फल स्वयं को नहीं प्राप्त होता। परंतु संचित कर्म को समाप्त करने का एक ही तरीका है गुरु की कृपा। जब पूर्ण संत या गुरु से गुरु मंत्र लेकर उसका सुमिरन एवं भजन करते हैं तो ईश्वर के प्रति अत्यधिक भक्ति और श्रद्धा बढ़ने पर ईश्वर स्वयं ही इन संचित कर्मों को जला देता है ऐसा तभी होता है जब शिष्य की अपार श्रद्धा एवं प्रेम ईश्वर में स्थापित हो जाती है। इस प्रकार मनुष्य ईश्वर भाव को प्राप्त कर लेता है या मोक्ष को प्राप्त कर लेता है गीता में इसे ही स्थितप्रज्ञ कहा गया है।

अब पुनः हम उसी शाकाहार के मुद्दे पर आते हैं कि इसकी उपयोगिता कहां है दुनिया में जितनी भी चीजें आप देख रहे हैं उनको तत्वों के आधार पर पांच श्रेणियों में बांटा गया है यह पांच तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश है इन्हीं तत्वों के मिश्रण से सबकी शरीर बनी है मनुष्य के शरीर में ये पाचों तत्व क्रियाशील (Active) हैं लेकिन आत्मा जो परमात्मा का अंश है इसे जीवन देती है। क्योंकि इंसान के शरीर में जो पांचो तत्व मौजूद है इसलिए इंसान को सृष्टि का सिरमौर कहा जाता है।

पहली श्रेणी वनस्पति की है जिसमें केवल जल तत्व ही सक्रिय होता है और चारों तत्व भी होते हैं पर वह सक्रिय नहीं होते हैं इसी प्रकार दूसरी श्रेणी जमीन के अंदर रहने वाले कीड़े और रेंगने वाले जीवों की है जिनमें अग्नि और पृथ्वी यह दो तत्व सक्रिय होते हैं जमीन के ऊपर रहने वाले कीड़े मकोड़े में अग्नि और वायु तत्व प्रधान होते हैं तीसरी श्रेणी पक्षियों की है जिनमें जल अग्नि और वायु यह तीन तत्व सक्रिय होते हैं चौथी श्रेणी चार पैरों वाले जानवरों जैसे गाय, भैंस आदि की है इनमें आकाश तत्व यानी भले बुरे के विवेक की पहचान करने वाले तत्वों को छोड़कर बाकी चारों तत्व सक्रिय होते हैं मनुष्य पांचवीं श्रेणी में है जो सबसे ऊंची श्रेणी है क्योंकि इसमें पांचों तत्व सक्रिय होते हैं अब हम एक उदाहरण के तौर पर इनके प्रभावों के विषय में चर्चा करते हैंजैसे आप पड़ोसी के बगीचे से फूल तोड़ ले तो आपको कोई सजा नहीं मिलेगी वह अपना गुस्सा प्रकट करेगा या गाली देगा या आपसे नाराज हो जाएगा परंतु यदि आप उसकी मुर्गी को मार दे तो हो सकता है वह आपके खिलाफ मुकदमा दायर कर दे और आपको जुर्माना हो जाए अगर आप उसके घोड़े को मार दे तो कैद की सजा हो सकती है परंतु यदि आप किसी इंसान की हत्या कर दे तो आपको फांसी या किसी प्रकार का मृत्युदंड मिल सकता है इसलिए संत उपदेश देते हैं कि संसार में रहते हुए हमें कर्मों का कम से कम बोझ इकट्ठा करना चाहिए और इसीलिए वह राय देते हैं कि फलों, सब्जियों आदि पर गुजारा करो यह प्रथम श्रेणी के जीव है इनमें एक तत्व ही सक्रिय है आत्मा इनमें भी है लेकिन इनको खाने से इतने कर्म जमा नहीं होते जितने किसी दूसरी श्रेणी के जीवों को खाने से होते हैं।

अगर आपको सौ किलो बोझ उठाना पड़ जाए तो आप बोझ के कारण एक कदम भी नहीं चल सकेंगे इसलिए संत हमेशा यही उपदेश देते है कि कर्मो का कम से कम बोझ इकट्ठा हो। इसका अर्थ है कि जिंदा रहने के लिए हम दूसरे जीव जंतुओं पर निर्भर हैं परंतु फल और सब्जियां आदि खाने से कर्मो का कम से कम बोझ इकट्ठा होगा जो एक दो दिन के भजन से नष्ट हो सकते है। इसलिए हमें इन्हीं पर गुजारा करना चाहिए।

निष्कर्ष रूप में हम शाकाहार के मुख्य प्रयोजन की ओर दृष्टिपात करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि एक ओर तो हम गुरु द्वारा बताए गए नियमों पर चलकर भजन सुमिरन द्वारा भगवत कृपा प्राप्त करके संचित कर्मों को नष्ट करने का प्रयास करते हैं तो दूसरी ओर रोज जीव हत्या करते हैं या उसमें भागीदार बनते हैं तो हम आगे नहीं बढ़ सकते, जहाँ से शुरू करते हैं वहीं रह जाते हैं। संचित कर्मों का जो बोझ हम पर लदा हुआ है उससे छुटकारा कैसे हो इस पर संत हमें उपदेश देते हैं कि जो कर्म हम इकट्ठा कर चुके हैं उनको भजन सुमिरन द्वारा नष्ट करें और आगे के लिए ऐसे कर्म इकट्ठे ना करें तभी हम वापस जाकर परमात्मा से मिलाप कर सकेंगे इसीलिए हमारा शाकाहारी होना जरूरी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीमद् भगवत्गीता।
2. वेदान्तसार।
3. कठोपनिषद्।
4. कबीरग्रन्थावली।
5. सन्त संवाद। भाग–1,2,3 (राधास्वामी सत्संग व्यास) ।